

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 1 अध्याय 11: द्वारका में श्रीकृष्ण

11 September 2026

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।

🙏 पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



श्वेत छत्र के नीचे, पुष्पवृष्टि से अभिषिक्त, श्रीकृष्ण द्वारका की आनन्दमग्न गलियों से होकर जा रहे हैं, और नगरवासी अपने लौटते हुए स्वामी के दर्शन का पान कर रहे हैं।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

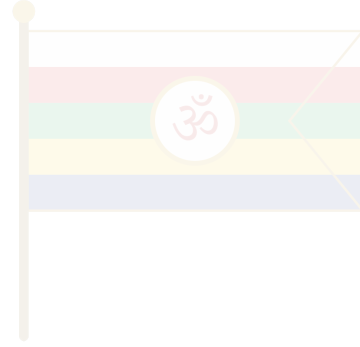
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञडम में आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पवित्र कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिमयी यात्रा। कुरुक्षेत्र का शोक पीछे छूट चुका है। पाण्डवों को सान्त्वना देकर और हस्तिनापुर के कार्यों को व्यवस्थित कर, श्रीकृष्ण अब अपने घर की ओर मुड़ते हैं। प्रथम स्कन्ध का यह ग्यारहवाँ अध्याय आनन्द का अध्याय है — उस समस्त नगर का आनन्द जो अपने प्रियतम की चिरप्रतीक्षा में था, और जब अन्ततः उनके शंख की ध्वनि सुनाई देती है, तब गलियों में उमड़ पड़ता है। यहाँ हम भगवान् के अवतार का कोमल, मानवीय रूप देखते हैं: अपने लौटे हुए पुत्र पर आँसू बहाते माता-पिता, प्रेमवश जिनके स्तनों से दूध बहने लगता है वे माताएँ, और एक ऐसा गृह-प्रत्यागमन जो इतना दीप्तिमान है कि स्वर्ग भी उससे ईर्ष्या करने लगे। और इस समस्त आनन्द के बीच ऋषिगण हमें उस गूढ़ सत्य का स्मरण कराते हैं — कि जो हमारे बीच इतनी घनिष्ठता से लीला करते हैं, वे सदा अस्पृष्ट हैं, सबके भीतर विराजमान अविकारी आत्मा।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 1 (प्रथम स्कन्ध)
- अध्याय: 11 (एकादश अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: भगवान् श्रीकृष्ण का द्वारका में प्रवेश
- प्रमुख वक्ता: पूज्य सूत जी, उग्रश्रवा (कथावाचक)
- प्रमुख श्रोता: नैमिषारण्य के ऋषिगण, शौनक जी के नेतृत्व में
- मुख्य स्थल: आनर्त-प्रदेश तथा द्वारका नगरी
- केन्द्रीय विषय: श्रीकृष्ण का द्वारका-प्रत्यागमन, नगरवासियों और स्वजनों का हर्षोल्लासपूर्ण स्वागत, माताओं और पत्नियों से पुनर्मिलन, तथा सदा-अनासक्त भगवान् के रूप में उनका स्वरूप
- प्रमुख श्लोक-परास: स्कन्ध 1, अध्याय 11, श्लोक 1–39
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

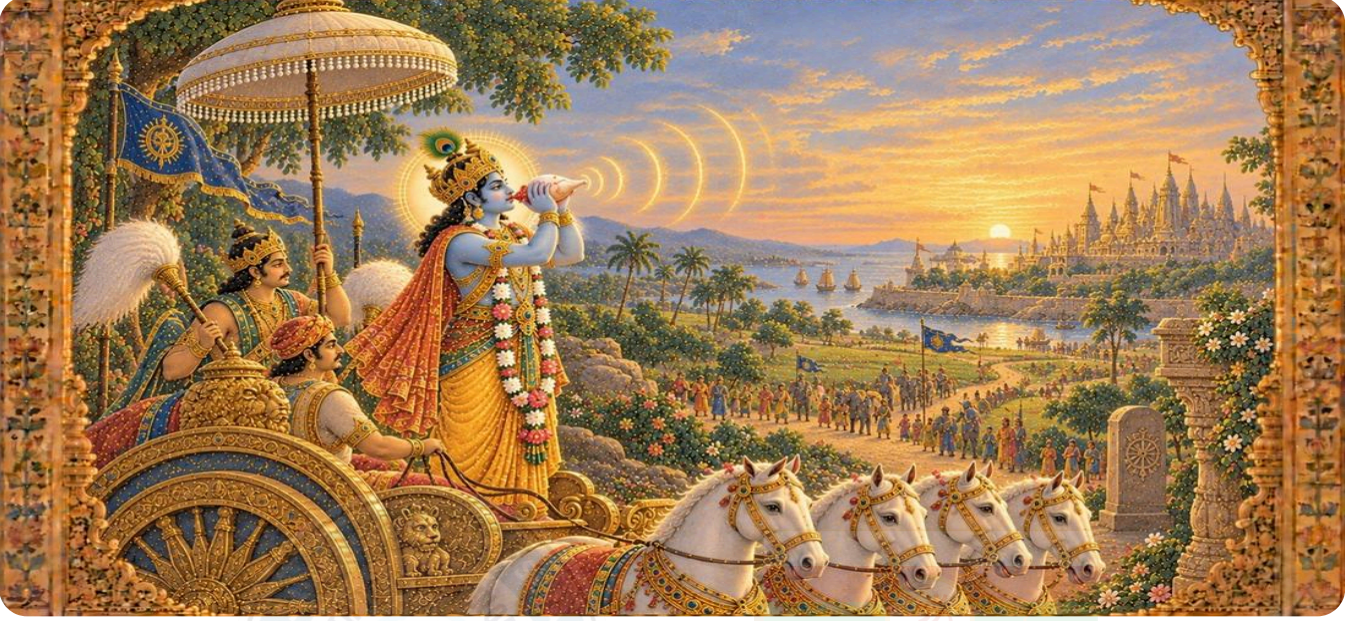


पिछले अध्याय से सन्दर्भ

दशम अध्याय में, महायुद्ध के पश्चात्, श्रीकृष्ण ने हस्तिनापुर में पाण्डवों से विदा ली। नगर की स्त्रियाँ अपने भवनों की छतों पर चढ़कर उनके दर्शन करने लगीं और उनके जाते समय उनकी स्तुति गाने लगीं, जिनका वे स्मित दृष्टि से अभिवादन करते रहे। संकट की आशंका से राजा युधिष्ठिर ने उनकी रक्षा हेतु सेना भेजी; किन्तु भगवान् ने पाण्डवों को कोमलता से लौटा दिया और अपने साथियों के साथ अपनी नगरी की ओर प्रस्थान किया। कुरु-जांगल, पांचाल, शूरसेन, ब्रह्मावर्त, कुरुक्षेत्र, मत्स्य आदि अनेक राज्यों से होकर, और सन्ध्या-वेला में सन्ध्या-वन्दन के लिए रुकते हुए, वे अन्ततः अपने समृद्ध देश आनर्त के निकट पहुँचे। घर की इसी देहरी पर ग्यारहवाँ अध्याय आरम्भ होता है।

पांचजन्य का नाद

अपने अत्यन्त समृद्ध आनर्त-प्रदेश में पहुँचकर श्रीकृष्ण ने अपना महाशंख पांचजन्य बजाया, मानो अपने उन जनों के शोक को शान्त करने के लिए, जिन्होंने उनके दीर्घ विरह का दुःख सहा था। भगवान् द्वारा बजाया गया वह शंख — जिसका श्वेत उदर उनके अरुण अधरों के स्पर्श से लाल हो उठा — उनके करकमलों में ऐसे शोभित हुआ जैसे लाल कमलों के युगल पर बैठा हुआ मधुर स्वर से गाता हुआ राजहंस।



अपने ही देश की सीमा पर पहुँचकर श्रीकृष्ण अपने जनों के शोक को शान्त करने के लिए अपना महाशंख पांचजन्य बजाते हैं (श्लोक 1-2)।

सूत उवाच

आनर्तान् स उपव्रज्य स्वृद्धाञ्जनपदान्स्वकान् ।

दध्मौ दरवरं तेषां विषादं शमयन्निव ॥ १ ॥

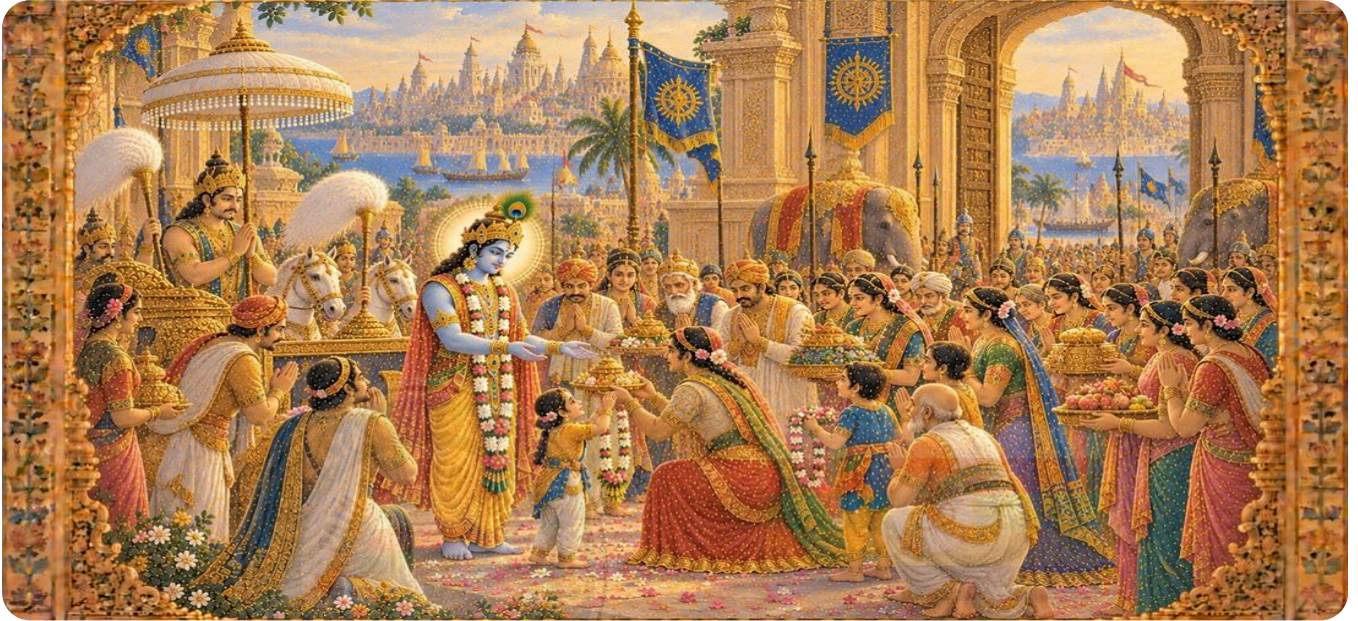
sūta uvāca ānartān sa upavrajya svṛddhāñ jana-padān svakān dadhmau daravaram teṣāṁ viṣādam śamayann iva ॥ 1 ॥

अर्थ: सूत जी ने कहा — अपने अत्यन्त समृद्ध आनर्त-प्रदेशों में पहुँचकर श्रीकृष्ण ने अपना श्रेष्ठ शंख बजाया, मानो अपने जनों के शोक को शान्त करने के लिए। (स्कन्ध 1, अध्याय 11, श्लोक 1)

उस परिचित नाद को सुनकर, जो संसार के भय को दूर भगा देता है, द्वारका के समस्त नगरवासी अपने स्वामी के दर्शन की लालसा से उनसे मिलने दौड़ पड़े।

नगरवासी अपने स्वामी के स्वागत को उमड़ पड़े

वे भगवान् के लिए अपनी भेंटें ले आये — जो अपने ही स्वरूप में रमण करते हैं और अपने ही स्वाभाविक आनन्द में सदा पूर्ण हैं — मानो सूर्य को, जो समस्त प्रकाश का स्रोत है, दीप अर्पित कर रहे हों। हर्ष से खिले मुख और आनन्द से गद्गद वाणी लिये, वे उनसे ऐसे बोले जैसे बालक अपने पिता से बोलते हैं। वे उनके उन चरणकमलों में नत हुए, जिन्हें ब्रह्मा, शिव और इन्द्र भी पूजते हैं, जो परम कल्याण के अभिलाषियों के परम आश्रय हैं और काल की पहुँच से परे हैं। “आप ही हमारी माता हैं,” उन्होंने कहा, “हमारे निःस्वार्थ मित्र, हमारे स्वामी और पिता, हमारे सच्चे गुरु और परम देव; आपकी सेवा से हम धन्य हो गये।”



द्वारका के लोग अपने स्वामी से मिलने उमड़ पड़ते हैं, भेंटें लिये और आनन्द से गद्गद कण्ठ से उनका अभिवादन करते हुए, जैसे बालक अपने पिता का अभिवादन करते हैं (श्लोक 9)।

फिर उन्होंने अपने द्वारा सहे हर विरह की वेदना को उन शब्दों में व्यक्त किया, जिन्हें कोई भी भक्त पहचान लेगा।

यर्हम्बुजाक्षापससार भो भवान्
कुरुन् मधून् वाथ सुहृदिदृक्षया ।
तत्राब्दकोटिप्रतिमः क्षणो भवेद्
रविं विनाक्षणोरिव नस्तवाच्युत ॥ ९ ॥

yarhy ambujākṣāpasasāra bho bhavān kurūn madhūn vātha suhṛd-didṛkṣayā tatrābda-koṭi-pratimaḥ kṣaṇo bhaved raviṁ vinākṣṇor iva nas tavācyuta ॥ 9 ॥

अर्थ: हे कमलनयन! जब-जब आप अपने मित्रों और स्वजनों के दर्शन हेतु कुरु या मधु (मथुरा) के प्रदेशों को प्रस्थान करते, तब बीतता हुआ प्रत्येक क्षण हमें करोड़ों वर्षों के समान प्रतीत होता — जैसे सूर्य के बिना नेत्र, हे अच्युत! (स्कन्ध 1, अध्याय 11, श्लोक 9)

इन प्रेमपूर्ण वचनों को सुनकर, भक्तवत्सल भगवान् अपनी कृपादृष्टि से सबको अनुगृहीत करते हुए नगर में प्रविष्ट हुए।

अलंकृत द्वारका नगरी

जैसे पाताल की राजधानी भोगवती नाग-जाति द्वारा रक्षित है, वैसे ही द्वारका यादव-वंश की उन प्रबल शाखाओं द्वारा रक्षित थी — मधु, भोज, दशार्ह, अर्ह, कुकुर, अन्धक और वृष्णि — जिनके समान बल में कोई न था। नगर कमल-सरोवरों से सुशोभित था, जो प्रत्येक ऋतु के फल-फूलों से समृद्ध उपवनों और उद्यानों से घिरे थे।



द्वारका नगरी, तोरणों, ध्वजाओं और पताकाओं से सजी हुई, अपनी छिड़की और पुष्पों से बिखरी गलियों के साथ, अपने स्वामी के प्रवेश की प्रतीक्षा में है।

उसके द्वार, प्रासाद और राजमार्ग उत्सव के प्रतीक-स्वरूप तोरणों से सजे थे, और भाँति-भाँति की ध्वजाओं-पताकाओं से अलंकृत थे, जिनके फहराते छोर सूर्य की किरणों को कहीं-कहीं रोक लेते थे। राजमार्ग और चौक स्वच्छ किये गये, सुगन्धित जल से छिड़के गये, और फल, फूल, अक्षत तथा नवीन अंकुरों से बिखरे गये थे। प्रत्येक घर के द्वार पर मंगलमय स्वागत सज्जित था — दही, अक्षत, फल और गन्ना, जल से भरे कलश, नैवेद्य, धूप और दीप।

स्वजनों और नगरवासियों का स्वागत

उनके लौटने का समाचार उनके प्रियतम स्वजनों को उनकी शय्याओं, आसनों और भोजन तक से उठा लाया — पूज्य वसुदेव, उनके पिता; अक्रूर; राजा उग्रसेन; महाबली बलराम, उनके ज्येष्ठ भ्राता; प्रद्युम्न और चारुदेष्ण; तथा जाम्बवती-पुत्र साम्ब। हर्ष और श्रद्धा से उमगते हुए, उन्होंने मंगल-शकुन-स्वरूप एक भव्य गजराज को अपनी शोभायात्रा के आगे रखा, मंगल-सूचक हस्तियों को साथ लिया, आशीर्वचन-हवन-सूक्तों का पाठ करते ब्राह्मणों को एकत्र किया, अपने रथों पर आरुढ़ हुए और शंख-तूर्य के नाद तथा वेद-मन्त्रों के उच्चारण के बीच भगवान् से मिलने निकल पड़े।



वसुदेव, उग्रसेन, बलराम और हर्षित स्वजन, एक भव्य गजराज तथा पवित्र मन्त्रों का पाठ करते ब्राह्मणों के नेतृत्व में, श्रीकृष्ण के गृह-स्वागत हेतु शोभायात्रा में निकलते हैं
(श्लोक 16-20)।

प्रमुख गणिकाएँ भी सैकड़ों की संख्या में पालकियों में बैठकर उनके दर्शन की उत्कण्ठा से निकल आईं; और नट, नर्तक, गायक तथा भाट-चारण उस असीम कीर्तिवाले भगवान् की अद्भुत लीलाओं का गान करने लगे। उस अवसर पर भगवान् अपने स्वजनों, सेवकों और नगरवासियों से यथोचित रीति से मिले। उन्होंने सबको, अन्त्यज तक को, सिर झुकाकर, आदरपूर्ण वचनों से अभिवादन कर, आलिङ्गन कर, हाथ दबाकर, और स्मित तथा स्नेहमयी दृष्टि से और मनोवांछित वर देकर प्रसन्न किया। और स्वयं भी अपने बड़ों, ब्राह्मणों और उनकी पत्नियों तथा वृद्धजनों से आशीर्वाद पाकर, सर्वशक्तिमान् भगवान् ने नगर में प्रवेश किया।

मार्ग पर शोभायमान भगवान्

जब श्रीकृष्ण राजमार्ग से जा रहे थे, द्वारका के प्रतिष्ठित कुलों की स्त्रियाँ उनके दर्शन-सुख का पान करने अपने भवनों की छतों पर चढ़ गईं। क्योंकि उनका वक्षःस्थल श्री (लक्ष्मी) का निवास है; उनका मुख नेत्रों के पान के लिए अमृत का प्याला; उनकी भुजाएँ लोकपालों का धाम; उनके चरणकमल उनके भ्रमर-रूप भक्तों का घर। उनका प्रत्येक अंग साक्षात् लावण्य है — इसीलिए द्वारकावासियों के नेत्र प्रतिदिन दर्शन करने पर भी तृप्त न होते थे।

सितातपत्रव्यजनैरुपस्कृतः

प्रसूनवर्षैरभिवर्षितः पथि ।

पिशङ्गवासा वनमालया बभौ

घनो यथाकोटुपचापवैद्युतैः ॥ २७ ॥

sitātapatra-vyajanaṁ upaskṛtaḥ prasūna-varṣair abhivarṣitaḥ pathi piṣaṅga-vāsā vana-mālayā babhau ghano yathārkoḍupa-cāpa-vaidyutaiḥ ॥ 27 ॥

अर्थ: सिर पर तने श्वेत छत्र और दोनों ओर डुलते चँवरों के साथ, मार्ग पर पुष्पों की वर्षा से अभिषिक्त, पीत वस्त्र धारण किये और वनमाला पहने भगवान् ऐसे शोभित हुए मानो सूर्य, चन्द्र-युगल, तारों, इन्द्रधनुष और बिजली की चमक से युक्त कोई मेघ। (स्कन्ध 1, अध्याय 11, श्लोक 27)

माताओं और पत्नियों से पुनर्मिलन

सबसे पहले भगवान् ने अपने माता-पिता के भवन में प्रवेश किया। वहाँ उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक अपनी सातों माताओं — देवकी आदि — के चरणों में सिर झुकाया, जिन्होंने बदले में उन्हें अपने हृदय से लगा लिया। जैसे ही उन्होंने अपने पुत्र को अपनी गोद में लिया, प्रेमवश उनके स्तनों से स्वयं दूध बहने लगा, और हर्ष से विह्वल होकर उन्होंने उसे अपने आँसुओं से नहला दिया।



श्रीकृष्ण अपनी सातों माताओं को प्रणाम करते हैं, जो उन्हें अपनी गोद में ले लेती हैं; प्रेमवश उनके स्तनों से दूध बहने लगता है और वे उन्हें हर्ष के आँसुओं से नहला देती हैं (श्लोक 29)।

ता: पुत्रमङ्गमारोप्य स्नेहस्नुतपयोधराः ।

हर्षविह्वलितात्मानः सिषिचुर्नेत्रजैर्जलैः ॥ २९ ॥

tāḥ putram aṅkam āropya sneha-snuta-payodharāḥ harṣa-vihvalitātmānaḥ siṣicur netrajair jalaiḥ
॥ 29 ॥

अर्थ: अपने पुत्र को गोद में लेकर, शुद्ध स्नेह से जिनके स्तनों से दूध बहने लगा, और जिनके हृदय हर्ष से विह्वल थे, उन माताओं ने अपने नेत्रों से बहती अश्रुधारा से उसे नहला दिया। (स्कन्ध 1, अध्याय 11, श्लोक 29)

फिर उन्होंने अपने उस अनुपम भवन में प्रवेश किया, जो प्रत्येक वांछित वस्तु से सम्पन्न था और जिसमें उनकी सोलह सहस्र से अधिक पत्नियों में से प्रत्येक के लिए एक पृथक् प्रासाद था। इतने लम्बे विरह के बाद लौटे अपने स्वामी को दूर से देखकर वे रानियाँ हर्ष से भर उठीं; और लज्जावन्त मुख लिये वे शीघ्रता से अपने आसनों से उठ खड़ी हुईं, यहाँ तक कि उनके विरह में लिये अपने तप-व्रतों को भी भूल गईं। असीम प्रेम से पूर्ण होकर उन्होंने अपने स्वामी का आलिंगन किया — पहले मन से, फिर नेत्रों से, और अन्ततः अपने बालकों के माध्यम से — और लज्जावश रोके हुए आँसू अनायास ही बह चले। यद्यपि वे सदा उनके समीप रहते थे, फिर भी उनके चरण प्रति क्षण नवीन लावण्य से युक्त प्रतीत होते; क्योंकि उन चरणों को कौन स्त्री कभी छोड़ सकती है, जिन्हें चंचल लक्ष्मी भी कभी नहीं छोड़तीं?

अनासक्त भगवान् की लीला

यहाँ कथा गृह-प्रत्यागमन की माधुरी से मुड़कर उसके गूढ़ अर्थ की ओर जाती है। जैसे वायु एक बाँस को दूसरे से रगड़कर ऐसी अग्नि प्रज्वलित कर देती है जो समस्त बाँस-वन को जला देती है, वैसे ही श्रीकृष्ण ने पृथ्वी के भार-स्वरूप उन राजाओं को परस्पर विरोध में खड़ा कर, स्वयं कोई शस्त्र न उठाते हुए, महायुद्ध में उनका पारस्परिक विनाश करा दिया — और अपना प्रयोजन सिद्ध कर वे मौन हो गये। यही वे भगवान् हैं, जिन्होंने मर्त्यलोक में अपनी लीला-लीला में अवतरित होकर, सहस्रों परम मनोहर स्त्रियों के बीच एक सांसारिक पुरुष के समान विहार किया। उनकी निष्कपट मुस्कानों और लज्जाशील चितवनों से आहत होकर, समस्त संसार का विजेता कामदेव भी मूर्च्छित होकर अपना धनुष गिरा देता; फिर भी स्त्रियों में रत्न-स्वरूप वे रानियाँ उनके मन की शान्ति को कभी विचलित न कर सकीं।



अपने गृह के आनन्द के बीच शान्त, भगवान् सदा प्रकृति के गुणों से अस्पृष्ट रहते हैं, यद्यपि वे उन्हीं में निवास करते हैं (श्लोक 38)।

उन्हें सांसारिक कार्यों में लगा देखकर, अज्ञानी जन उन परम अनासक्त भगवान् को आसक्ति से पूर्ण मनुष्य समझ बैठते हैं। किन्तु उनकी वास्तविक ईश्वरता तो इसी में है:

एतदीशनमीशस्य प्रकृतिस्थोऽपि तद्गुणैः ।
न युज्यते सदात्मस्थैर्यथा बुद्धिस्तदाश्रया ॥ ३८ ॥

etad īśanam īśasya prakṛti-stho 'pi tad-guṇaiḥ na yuyjate sadātma-sthair yathā buddhis tad-āśrayā ॥ 38 ॥

अर्थ: भगवान् की दिव्य ईश्वरता यही है: यद्यपि वे प्रकृति में स्थित हैं, फिर भी उसके गुणों से कभी नहीं बँधते — जैसे उनमें शरण ली हुई विवेकशील बुद्धि, जिस प्रकृति में वह रहती है, उसके गुणों से अलिप्त रहती है। (स्कन्ध 1, अध्याय 11, श्लोक 38)

यहाँ तक कि उनकी अपनी पत्नियाँ भी, उनकी महिमा की पूर्ण थाह न पाकर, कभी-कभी अपने कोमल स्वामी को एक सीधा-सा पति समझ बैठतीं जो मानो उन्हीं की इच्छा के अनुसार चलते हों — ठीक वैसे ही जैसे ईश्वर को न मानने वाले उन्हें सबके परम नियन्ता के रूप में नहीं पहचान पाते (श्लोक 39)।

प्रमुख श्लोक

अध्याय का केन्द्रीय श्लोक यह प्रकट करता है कि भगवान् ने अपने अवतार के प्रयोजन को कैसे पूर्ण किया — स्वयं एक भी शस्त्र न उठाकर पृथ्वी के भार का हरण कर दिया:

एवं नृपाणां क्षितिभारजन्मना-

मक्षौहिणीभिः परिवृत्तेजसाम् ।

विधाय वैरं श्वसनो यथानलं

मिथो वधेनोपरतो निरायुधः ॥ ३४ ॥

evam nṛpāṇāṃ kṣiti-bhāra-janmanām akṣauhiṇībhiḥ parivṛtta-tejasām vidhāya vairam śvasano yathānalam mitho vadhenoparato nirāyudhaḥ ॥ 34 ॥

अर्थ: जैसे वायु बाँसों को परस्पर रगड़कर उन्हें प्रज्वलित कर देती है, वैसे ही भगवान् ने, स्वयं कोई शस्त्र न उठाते हुए, पृथ्वी के भार-स्वरूप और विशाल सेनाओं से घिरे उन राजाओं में परस्पर वैर उत्पन्न किया, और उनका पारस्परिक विनाश कराकर मौन हो गये। (स्कन्ध 1, अध्याय 11, श्लोक 34)

प्रमुख शिक्षाएँ

1. भगवान् अपने भक्तों की तड़प का उत्तर देते हैं। कृष्ण अपने जनों के “शोक को शान्त करने” के लिए पांचजन्य बजाते हैं (श्लोक 1), और वे सब एक साथ दौड़ पड़ते हैं। जब हृदय सचमुच उनके लिए तरसता है, तो उनके आगमन का नाद ही उसका शोक हर लेता है।
2. विरह प्रेम को गहरा करता है। नगरवासी स्वीकार करते हैं कि उनके बिना एक क्षण करोड़ों वर्षों-सा, सूर्य के बिना नेत्र-सा लगता था (श्लोक 9)। भक्ति में सहा गया विरह का दुःख प्रेम का विरोधी नहीं, अपितु उसे प्रज्वलित करने वाली अग्नि है।
3. श्रद्धा तैयारी में प्रकट होती है। भगवान् के आगमन से पूर्व द्वारका स्वच्छ की जाती है, छिड़की जाती है, सजाई और दीपों से आलोकित की जाती है (श्लोक 13-15)। भक्ति बाह्य रूप में — उस प्रेममयी तत्परता में प्रकट होती है जिससे हम पावन के लिए स्थान तैयार करते हैं।

4. महानता विनम्रता में झुकती है। सर्वशक्तिमान् भगवान् सिर झुकाकर, आलिंगन और मधुर वचन से सबको, “अन्त्यज तक को” प्रसन्न करते हैं (श्लोक 22–23)। सच्ची श्रेष्ठता गर्व से नहीं, अपितु सबसे छोटे के प्रति दिखाई गई कोमलता से पहचानी जाती है।

5. प्रेम अपने उद्गम की ओर लौटता है। उनकी वृद्ध माताओं के स्तनों से दूध बहता है, और उनकी पत्नियाँ पहले मन से, फिर अपने बालकों के माध्यम से उनका आलिंगन करती हैं (श्लोक 29, 32)। यह अध्याय स्नेह को उसके शुद्धतम रूप में दिखाता है — समस्त नगर का प्रेम अपने उद्गम-स्वरूप भगवान् की ओर अभिसरण करता है।

6. भगवान् सदा अनासक्त हैं। यद्यपि वे सांसारिक पुरुष-सी लीला करते हैं, कोई सौन्दर्य उनके मन की शान्ति को विचलित नहीं कर सकता; प्रकृति में स्थित रहकर भी वे उसके गुणों से कभी नहीं बँधते (श्लोक 36–38)। हमारे साथ उनकी घनिष्ठता उनकी दिव्य परे-सत्ता से कभी समझौता नहीं करती — और यही उनके स्वरूप का रहस्य है।

एक भक्तिमयी चिन्तन

उस भगवान् से प्रेम करना सहज है जो हमें संकट से उबारते हैं, जैसे उन्होंने पिछले अध्यायों में पाण्डवों को उबारा। यह अध्याय हमसे कुछ कोमल-सा माँगता है: उस भगवान् से प्रेम करना जो केवल घर लौटते हैं। यहाँ कोई राक्षस नहीं, कोई शस्त्र नहीं, उद्धार का कोई चमत्कार नहीं — केवल हवा में गूँजता एक शंख, एक बुहारी गई गली, एक माता के आँसू, और एक ऐसा नगर जो दृष्टि हटा ही नहीं सकता। और फिर भी ऋषिगण, इस समस्त माधुरी के बीच, हमें वह गहरा सत्य भूलने नहीं देते। जिनका चारों ओर से आलिंगन हो रहा है, जिन्हें उनका अपना परिवार एक साधारण मनुष्य समझ बैठता है, वे सबकी अविकारी आत्मा हैं, जिस प्रेम को वे इतनी उदारता से ग्रहण करते हैं उससे भी अस्पृष्ट। यहाँ हमारी अपनी भक्ति के लिए एक शिक्षा है। हम उनके उतने ही निकट आ सकते हैं जितना द्वारका आई — उन्हें अपनी भेंटें दें, उनके विरह में रोएँ, अपने हृदय को वैसे तैयार करें जैसे नगर अपनी गलियाँ तैयार करता है — और फिर भी हम उन्हें कभी समाप्त या न्यून नहीं कर सकेंगे। वे स्वयं को प्रेम की घनिष्ठता में पूर्णतः दे देते हैं, और पूर्णतः मुक्त रहते हैं। ऐसे भगवान् से प्रेम करना, धीरे-धीरे, स्वयं मुक्त हो जाना है।

एक दैनिक भक्ति-अभ्यास

आज, भगवान् के लिए एक छोटा-सा स्वागत तैयार करें, जैसे द्वारका ने अपनी गलियाँ तैयार कीं। अपनी प्रातःकालीन प्रार्थना से पूर्व, जहाँ आप बैठते हैं उस स्थान को स्वच्छ करें, एक दीप या धूप जलाएँ, और वहाँ कुछ सरल और पवित्र रखें — एक फूल, एक फल, कुछ अक्षत। फिर, जब आप स्थिर हों, नगरवासियों के वचनों का स्मरण करें और उन्हें अपना बनाएँ: “आपके बिना प्रत्येक क्षण एक युग-सा लगता है।” उस एक तड़प को अपने स्मरण के कुछ शान्त क्षणों का आकार लेने दें। बाह्य कर्म छोटा है; भगवान् तो हृदय की तत्परता ग्रहण करते हैं।

उपसंहार

इस प्रकार श्रीमद्भागवत का ग्यारहवाँ अध्याय समाप्त होता है, जिसे आत्मज्ञानी परमहंस-संहिता कहते हैं। इस अध्याय में, श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 1 अध्याय 11 में, हमने आनर्त की सीमाओं पर गूँजते पांचजन्य को सुना और समस्त द्वारका को भेंटें लिये, हर्ष से रोते हुए अपनी गलियों में उमड़ते देखा। हमने नगर को अपने स्वामी के स्वागत हेतु अलंकृत होते, उनके स्वजनों को हर्षित शोभायात्रा में निकलते, और सर्वशक्तिमान् भगवान् को गृह-प्रवेश करते हुए हर हृदय को, अन्त्यज तक को, आनन्दित करते देखा। हमने उनके पुनर्मिलन की कोमलता का पान किया — उनकी माताओं के स्तनों से बहता दूध, उनकी पत्नियों का वह प्रेम जो उनके बालकों के माध्यम से उन्हीं की ओर लौट आया। और इस समस्त

माधुरी के शिखर पर हमें स्मरण कराया गया कि जिनका चारों ओर से आलिंगन हो रहा है, वे सदा अनासक्त आत्मा हैं, प्रकृति में स्थित रहकर भी उसके गुणों से अस्पृष्ट। यहाँ भक्ति गृह-प्रत्यागमन का रूप धारण करती है, और हमें सिखाती है कि अपने ही हृदय की गलियों में भगवान् का स्वागत कैसे करें। हम वह स्वागत प्रेम से तैयार करें, और अपनी निकटता में भी उस असीम प्रभु को कभी न भूलें जो इतने निकट आ गये हैं।

श्रीमद्भागवतम् की दिव्य वाणी हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति को जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

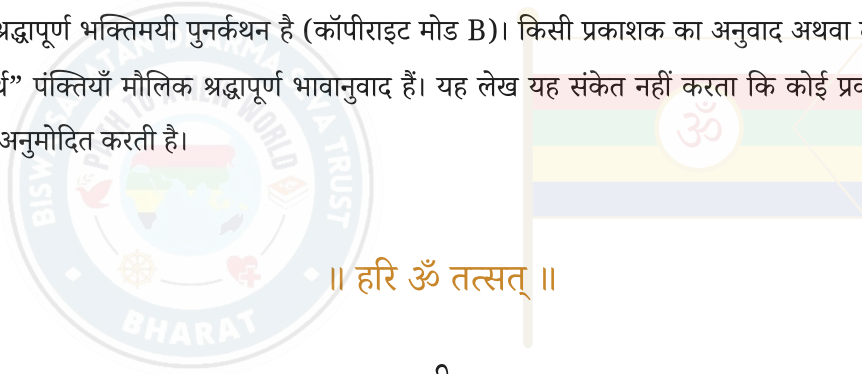
जय श्री माधव।

सन्दर्भ एवं आभार

मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण (हिन्दी/अंग्रेज़ी), प्रथम स्कन्ध, एकादश अध्याय, पुस्तक-पृष्ठ 41–44।

श्रीमद्भागवतम् विज़डम • बिस्वा सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट। पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेख एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण भक्तिमयी पुनर्कथन है (कॉपीराइट मोड B)। किसी प्रकाशक का अनुवाद अथवा टीका पुनरुत्पादित नहीं की गई है; श्लोकों की “अर्थ” पंक्तियाँ मौलिक श्रद्धापूर्ण भावानुवाद हैं। यह लेख यह संकेत नहीं करता कि कोई प्रकाशक, पुस्तकालय अथवा संस्था इसे प्रायोजित या अनुमोदित करती है।



॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-1-chapter-11-krishna-enters-dwaraka-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज़डम • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट